॥ श्रीमते रामानुजाय नमः॥

वैदिक-वाणी

वर्ष- २० अप्रैल-जून सन्- २००७	**श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्** हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	**अंक- ३** रामानुजाब्द- ९९० त्रैमासिक प्रकाशन

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थ-गहनादायासकादाश्रय
श्रेयोमार्गमशेषदुःख-शमनव्यापारदक्षं क्षणात् ।
स्वात्मीभावमुपैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ।। वै०श०-६३

अर्थ—हे मेरे चित्त, सर्व दुःखों के मूल कारण इस विषय-भोगों के गहन वन से विरत हो जाओ तथा क्षण भर में ही सारे कष्टों को दूर करनेवाले श्रेयस् अर्थात् मोक्ष-मार्ग का आश्रय ग्रहण करो; अपनी जलतरंग के समान चंचल आचरणों को त्यागकर आत्म-भाव में स्थित होकर; शान्त तथा प्रसन्न हो जाओ और फिर कभी इस क्षणभंगुर संसार में आसक्त नहीं होना।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी (धर्म के चार चरण)	३
२.	आत्मदर्शन के साधन	४
३.	मोहरूपग्राह से बचें	६
४.	स्मरणमात्र से मुक्ति	८
५.	अधर्म के पाँच स्थान	९
६.	यज्ञोपवीत संस्कार	१०
७.	माला धारण विधि	१२
८.	जप विधि	१३
९.	वरदवल्लभा-स्तोत्र का अनुशीलन	१४
१०.	गुरुवर महिमा	१७
११.	श्रीराम विवाह प्रसङ्ग का रहस्य	२०
१२.	बालकों को सदाचार की शिक्षा दें	२२
१३.	भक्तिप्रियोमाधवः	२३
१४.	ऐतिहासिक धरोहर श्रीराम सेतु की रक्षा	२४
१५.	अर्चावतार (प्रतिमा रूप में)	२८

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

— **सम्पादक**

हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)

दूरभाष : ०६११४-२७१३०९

वैदिक-वाणी

धर्म के चार चरण

सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला धर्म है। धर्म से मानव का कल्याण होता है। जो धर्म का पालन करता है धर्म सदा उसकी रक्षा करता है। जो धर्म का परित्याग कर देता है उसकी हानि होती है। धर्म-विहीन मानव, दानव अथवा पशुतुल्य हो जाता है। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े की अपेक्षा मानव का विशेष महत्त्व धर्म से ही है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन से सम्बन्ध प्राणीमात्र का है। धर्म का पालन पशु, पक्षी आदि के लिये सम्भव नहीं है। मानव शरीर ही धर्मपालन के योग्य है। धर्म के चार चरण हैं—तप, शौच, दया और सत्य। शास्त्रीय नियमानुसार शरीर को कष्ट देना तप है (काम क्लेशो तपः)। कृच्छ्र, चान्द्रायण एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी, नृसिंहचतुर्दशी और वामनद्वादशी—ये व्रत तपस्वरूप हैं। तप से अन्तःकरण में निर्मलता आती है। अनादिकाल से सञ्चित आत्मगत दोष तप से नष्ट होते हैं। अत एव भगवान श्रीकृष्ण ने 'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्' ऐसा कहा है। इस वचन से मनुष्य की पवित्रता में तप को कारण बतलाया गया है।

धर्म का दूसरा चरण है—शौच। शौच का अर्थ है—पवित्रता। मानव का पुनीत कर्त्तव्य होता है मन, वचन और शरीर–इन तीनों को पवित्र रखना। राग-द्वेष आदि से रहित होना, मन की पवित्रता है। सत्य बोलना वाणी की पवित्रता है। माँस, मछली, दारू, ताड़ी, अण्डा, मूर्गी, प्याज-लहसुन इन अभक्ष तथा अपेय चीजों का सेवन न करना शरीर की पवित्रता है।

धर्म का तीसरा चरण है—दया (परदुखासहिष्णुत्वम् दया) अर्थात् किसी दूसरे के दुःख को सहन न करना दया है। कोई ऐसा वचन न बोले जिससे किसी को कष्ट हो। शरीर से कोई वैसा कर्म न करे, जिससे किसी को पीड़ा हो। मन से किसी का अहित न सोचे। अगर कोई व्यक्ति कष्ट में पड़ा हुआ हो तो उसे हर प्रकार के कष्ट से दूर करने का प्रयास करें।

'मृदु पूर्व च भाषते' इस वाल्मीकि वचन के अनुसार भगवान श्रीराम मीठे वचन बोलते थे, किसी द्वारा कठोर वचन कहने पर भी उसका उत्तर नहीं देते थे। ***उच्यमानोऽपि पुरुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते।*** यह राम का सद्व्यवहार अनुकरणीय है।

धर्म का चतुर्थ चरण है—सत्य। जिस चीज को जिस रूप में देखें या सुने उसे उसी रूप में कहना सत्य है। सत्य बोलने से वाणी सिद्ध हो जाती है। सदा सत्य बोलने वाला मानव जिसको जो कुछ भी कहता है उसका फल प्रत्यक्ष होता है। सत्य बोलने वाला जगत् को जीत लेता है ***'सत्येन लोकान् जयति'।*** अतएव जटायुमुक्ति प्रसङ्ग में दाक्षिणात्य आचार्यों ने कहा है कि मानवीय लीला करने वाले भगवान श्रीराम ने जटायु को सदा सत्य पालन करने के कारण ही मुक्ति प्रदान किया था। सदा सत्य बोलने से जगत् में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अत एव 'सत्यं वद धर्म चर', 'सत्यात् न प्रमदितव्यम्' अर्थात् सदा सत्य बोले, कभी सत्य-पालन में प्रमाद न करें। पूज्यपाद गोस्वामी जी ने मानस में इसका समर्थन करते हुये कहा है—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाय। वेद पुराण विदीत मनु गाय।।
नहिं असत्य सम पालक पुँजा। गिरिसम होईक कोटिक गूँजा।।

आत्म-दर्शन के साधन

सभी प्राणी अर्थ और काम के दर्शन में संलग्न हैं। अर्थ और काम के संयोग से क्षणिक और अल्प सुख मिलता है। आत्मा तथा परमात्मा के दर्शन से अनन्त और अक्षय सुख प्राप्त होता है। अत एव वेदान्त दर्शन ***(आत्मावारे द्रष्टव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः)*** से आत्मदर्शन को अनन्त और अविनाशी सुख का साधन कहा है। प्रथम सुयोग्य गुरु से श्रुति वाक्यों द्वारा आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को समझे। तदनन्तर उनका मनन करे, फिर उन्हें दर्शन करे। उनके दर्शन के साधन बीस बतलाये गये हैं—

१. विद्या, धन, बल आदि के अभिमान में महापुरुषों का अपमान न करें।

२. संसार में धर्मात्मा बनने की ख्याति के लिए जो कर्म किया जाता है उसे दम्भ कहते हैं। जगत् में सात्त्विक बुद्धि से स्वकर्त्तव्य समझकर धर्म का पालन करें। धर्म के पालन में कल्याण की भावना रखें। लोग मुझे धर्मात्मा कहें इस भावना से धार्मिक कर्म न करें।

३. मन से किसी का बुरा न सोचे, ऐसा वचन न बोलें जिससे किसी को कष्ट हो जाय और शरीर से भी किसी को कष्ट न पहुँचायें।

४. यदि कोई कष्ट देता है तो भी उसके प्रति अपने मन में विकार न आने दें।

५. सबों के प्रति मन, वचन और शरीर में एकरूपता लावें। अर्थात् जो मन से सोचे, उसे ही कहें और वैसा ही शरीर से आचरण करें।

६. आचार्य के विना किसी को आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है। 'आचार्यवान् पुरुषोवेद' जिस पर आचार्य की कृपा होती है वही पुरुष आत्मा और परमात्मा को जानता है। इसलिये आत्मा और परमात्मा का ज्ञान कराने वाले आचार्य की सब प्रकार से सेवा करे। आचार्य ब्रह्म के समान उपास्य होते हैं।

७. मन, वचन और शरीर से पवित्र रहें। राग-द्वेष आदि से रहित होना मन की पवित्रता है। सत्य बोलना वाणी की पवित्रता है। अभक्ष्य और अपेय चीजों का सेवन न करना शरीर की पवित्रता है।

८. अपने कल्याण के लिए वेद पुराणादि शास्त्रों के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर स्थिर रहें।

९. आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त भोग विषयों में मन को न लगावें।

१०. आँख, नाक, जीभ, कान और त्वचा—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को अपने-अपने विषय भोगों में आसक्त न होने दें। यह है इन्द्रियों को विषय से वैराग्य।

११. शरीर में आत्माभिमान न करें अर्थात् शरीर को आत्मा न समझें। अन्य किसी के प्रति भी अहङ्कार न करें।

१२. जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग और दुःख से सबों को विशेष कष्ट होता है। मानव न्याय पथ पर चलने के लिए उन कष्टों को सदा स्मरण करते रहे। शुभ कर्म के आचरण से संसार का बन्धन छुट जाता है, उससे जन्म, मृत्यु आदि विकार जन्य कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता।

१३. सांसारिक विषय भोगों में आसक्ति होने से बार-बार जन्म-मृत्यु रूप विकार होते रहते हैं। अत: आत्मकल्याण चाहने वाले को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

१४. स्त्री, पुत्र, धन, गृह आदि से सम्बन्ध उतना ही रखना चाहिए जितना रखने से वैदिक धर्मपालन में सहयोग मिल सके। भोग्य दृष्टि से उनमें सम्बन्ध न रखे।

१५. प्रिय वस्तु की प्राप्ति होने पर हर्ष और अप्रिय वस्तु की प्राप्ति होने पर विषाद का अनुभव न करें।

१६. अनन्य भाव से भगवान में प्रेम करें। एकमात्र परमात्मा के प्रति की जाने वाली भक्ति अव्यभिचारिणि भक्ति होती है। इसी भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, शबरी, गजेन्द्र आदि पर भगवान की कृपा ऐसे ही भक्ति से हुई है।

१७. आत्मा और ब्रह्म का चिन्तन करते समय एकान्त में रहना चाहिए; क्योंकि अन्य लोगों के पास बैठकर चिन्तन करने से बाधा पहुँचती है उससे एकाग्रता नहीं बनती है।

१८. विषयी मानवों के पास रहने से संस्कार दूषित होता है इसलिये उनमें प्रेम न करें।

१९. आत्मविषयक ज्ञान का नाम अध्यात्मज्ञान है। कल्याण साधक पुरुष को उसमें स्थिर रहना चाहिए।

२०. तत्त्वज्ञान के लिये बार-बार चिन्तन करें। ये सब जीवात्मस्वरूप ज्ञान के साधन कहे गये हैं। वस्तुत: यही ज्ञान है इसके अतिरिक्त अन्य सब आत्मज्ञान के विरोधी होने से अज्ञान कहे गये हैं।

×*×*×*×*×*×*

श्रीवैष्णवों के लिए प्रात:स्मरणीय त्रयोदश वाक्य :—

१. अस्मद् गुरुभ्यो नम:	२. अस्मद् परम गुरुभ्यो नम:
३. अस्मद् सर्व गुरुभ्यो नम:	४. श्रीमते रामानुजाय नम:
५. श्रीपराङ्कुशदासाय नम:	६. श्रीमद्यामुनमुनये नम:
७. श्रीराममिश्राय नम:	८. श्रीपुण्डरीकाक्षाय नम:
९. श्रीमन्नाथमुनये नम:	१०. श्रीमते शठकोपाय नम:
११. श्रीमते विष्वक्सेनाय नम:	१२. श्रीक्षियै नम:
१३. श्रीधराय नम:	

श्रीभाष्यकार श्रीस्वामी रामानुजाचार्य के पञ्चाचार्य :

१. श्रीमहापूर्ण स्वामी	—	पञ्च संस्कार
२. श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी	—	१२ वार मन्त्रार्थरहस्य का अध्ययन
३. श्रीमालाधर स्वामी	—	सहस्त्रगीति का अध्ययन
४. श्री वररंगपूर्ण स्वामी	—	वेदान्त के गूढ़ार्थ रहस्य का अध्ययन
५. श्रीशैलपूर्ण स्वामी	—	वाल्मीकि रामायण का १२ बार अध्ययन

मोहरूप ग्राह से बचें

जीव तीन प्रकार के होते हैं–नित्य, मुक्त और बद्ध। सदा त्रिपादविभूति वैकुण्ठ में रहने वाले जीव नित्य होते हैं वैसे में विष्वक्सेन, गरुड़ आदि परवासुदेव के पार्षदगण हैं। वे कर्मानुसार मायापुरी संसार में नहीं आते हैं। भगवद् आज्ञा से सृष्टि में आध्यात्मिक विशेष कार्य करने के लिए ही कभी-कभी भूतल पर आते हैं। भगवदिच्छा से वे सबलोग उनके कार्यों को पूरा करके वैकुण्ठ में चले जाते हैं।

जो भगवद् भजन करके उनकी कृपा से संसार के कष्टों से मुक्त हो गये हैं, वे मुक्त जीव कहे गये हैं। वैसे में सनकादि, प्रह्लाद, नारद, आलवार, आचार्य गीद्धराज, जटायु, शबरी आदि हुए। ये सब संसार के बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो गये हैं। जिन्हें माया का बन्धन लगा हुआ है, वे बद्ध जीव कहलाते हैं। ब्रह्मा से कीटाणुपर्यन्त सब जीव बद्ध माने गये हैं। समस्त बद्ध जीवों के हृदय को मोहरूप ग्राह पकड़े हुए है। जगत् के सभी प्राणी सुखी बनने के लिये प्रयत्नशील हैं। फिर भी कष्ट से मुक्त नहीं हो रहे हैं; क्योंकि मोहरूप ग्राह उन्हें दु:खी बनाने में कारण है। शरीर को आत्मा समझना, आत्मा को स्वतन्त्र मानना, समस्त जगत् का कारण, आधार स्वामी तथा जगन्नियन्ता परमात्मा को न मानना और संसार के भोग साधनों को ही सत्य समझना मोह है। इसे अज्ञान भी कहते हैं।

मोह सकलव्याधिन करमूला। तिन्ह ते पुनि उपजै बहु सूला।।

गजेन्द्र चरित्र से हम बद्ध जीवों को शिक्षा मिलती है कि मोहरूप ग्राह से बचने के लिए गजेन्द्र की भाँति भगवान नारायण का शरणागत होकर उनका भजन करें। जलीय जीव ग्राह गजेन्द्र का पैर पकड़े हुए था उससे मुक्ति के लिए गजेन्द्र ने बहुत प्रयास किया; परन्तु वह अपनी शक्ति से अपने को बचाने में असमर्थ हो गया। उसे पूर्वजन्म के संस्कारवश भगवान नारायण का स्मरण हो आया।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञान बन्धनात्।
प्राप्तोभगवतोरूपं पीतवासाचतुर्भुज:।। भाग०८,४,६

उसने शुद्ध भाव से प्रेमपूर्वक श्रीमन्नारायण का स्तवन किया उसपर प्रसन्न होकर नारायण गरूड़ासन होकर आ गये और ग्राह को मारकर गजेन्द्र को मुक्त कर दिये। उसी प्रकार सांसारिक जीवों को मोह से छुटकारा के लिए नारायण का भजन करना चाहिये। जो प्रेमपूर्वक नारायण का स्मरण करता है, नारायण उसके मोहरूप ग्राह को मारकर उसे सदा के लिए कष्टों से मुक्त कर देते हैं।

श्रीराम और लक्ष्मण विदेहनन्दिनी सीता का अन्वेषण कर रहे थे। शङ्कर जी ने उन्हें प्रणाम किया। शङ्कर की पत्नी सती को मोह हो गया। वह श्रीराम को परमात्मा के रूप में न देखकर एक राजकुमार के रूप में देख रहीं थीं। उससे उसके मन में शङ्का हो गयी कि जगद् बन्द्य शङ्कर जी ने राजकुमार को प्रणाम क्यों किया? उसने शङ्कर जी से पूछा कि आपने राजकुमार को प्रणाम क्यों किया? शङ्कर जी ने उत्तर दिया कि जिनकी लीला का गान कुम्भज ऋषि करते हैं, योगिगण जिन्हें निर्मल मन से ध्यान करते हैं, वेद जिनकी महिमा का वर्णन नेति-नेति कहकर करता है वे ही परमदयालु भक्तवत्सल भगवान मानव कल्याण के लिए अपनी इच्छा से दिव्य शरीर धारणकर भूतल पर लीला कर रहे हैं।

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतन विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।।
सोई रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।।

सच्चे सुयोग्य गुरु से मोह दूर होता है; परन्तु कभी-कभी मोहग्रस्त व्यक्ति पर सद्‌गुरु के भी उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता, सती के मोह को दूर करने के लिए शङ्कर जी ने बहुत प्रयास किया; किन्तु उससे सती का मोह नहीं हटा। उस समय शङ्कर जी को कहना पड़ा—

होइहि सोई जो रामरचि राखा। को करि तर्क बढावै साखा।।

सती श्रीराम की परीक्षा के लिए सीता के वेष में थीं। शङ्कर जी ने उन्हें त्याग दिया। मोह ने सीता को पति के वचन पर विश्वास नहीं करने दिया। उससे सती को भी महान कष्ट का अनुभव करना पड़ा। शङ्कर जी ने भी स्वीकार किया कि श्रीराम कृपा विना मोह का निवारण नहीं होता है।

मानव अपने दु:खों के निवारण के लिए परमात्मा से सम्बन्ध बनायें। वे ही समस्त दु:खों को दूर करने में पूर्ण समर्थ हैं। प्राकृत शक्ति सम्पन्न लोगों से दु:ख का आत्यन्तिक नाश सम्भव नहीं है। जैसे प्यास जल के बिना नहीं मिट सकती है, उसी प्रकार नारायण के विना कष्ट दूर नहीं हो सकता। नारायण सकल हेय गुणों से रहित तथा अनन्तकल्याण गुणों के सागर हैं। वे जीवों के उद्धार के लिये सतत सचेष्ट रहते हैं। नारायण परमदयालु एवं सर्वज्ञ होते हुए भी संसाररूप तन्त्र को कायम रखना चाहते हैं। अत: मानव जब उनके चरणों में प्रणत हो जाता है, तब प्रभु उस पर कृपाकर उसके दु:खों को सदा के लिए नाश कर देते हैं। भगवान अपने सङ्कल्प से विश्व का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, वे उभयविभूति नायक समस्त जगत् के स्वामी, सर्वविधकारण एवं जगदाधार हैं। भगवान नारायण के ऐसे-ऐसे कार्य देखे तथा सुने जाते हैं जो सबों को आश्चर्य में डाल देने वाले हैं। जैसे सर्वत्र जल वर्षाने वाला मेघ का काम, समुद्र की सीमाबद्ध स्थिति, चन्द्रमा का क्षय-वृद्धि रूप कार्य, वायु की विभिन्न दिशाओं से चञ्चलता पूर्ण गमन, विजली की चमक और सूर्य की गति आदि कार्य भगवान के सङ्कल्प से ही हो रहे हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् का मन्त्र इसी रहस्य को प्रकट करते हुए कहता है कि नारायण के भय से वायु नियमानुसार चलता है, सूर्य ठीक समय पर उदित और अस्त होता है, अग्नि, इन्द्र और मृत्यु ये सब अपना-अपना कार्य नियमपूर्वक सुव्यवस्थित रूप से करते रहते हैं।

भीषास्माद्वात: पवते भीषोदेति सूर्य:।
भीषाऽस्माद्ग्निश्चेन्दश्चमृत्युर्धावति पञ्चम:॥ (तै०उ० २,८,१)

भक्ति सागर में गोता लगाने वाले द्वादश आलवारों के नाम :

१. श्री सरोयोगी स्वामी	२. श्री भूतयोगी स्वामी	३. श्री महायोगी स्वामी
४. श्री विष्णुचित्त स्वामी	५. श्री भक्तिसार स्वामी	६. श्री कुलशेखर स्वामी
७. श्री योगीवाहन स्वामी	८. श्री भक्तांघ्रिरेणु स्वामी	९. श्री परकाल स्वामी
१०. श्री शठकोप स्वामी	११. श्री मधुरकवि स्वामी	१२. श्री गोदाम्बा जी

स्मरणमात्र से मुक्ति

जिसके स्मरणमात्र से भवबन्धन छुट जाता है, वे भगवान विष्णु ही परतत्व हैं। वे देवताओं के देवता जगत् के आदि कारण तथा पुरुषोत्तम हैं। लीलाविभूति के रूप में उनके अनेक अवतार हुए हैं— भगवान नृसिंह, वामन, श्रीराम एवं कृष्णादि स्वरूप में अनेक प्राणियों का कल्याण करते रहते हैं। मरणकाल में उनका स्मरण होने पर प्राणी का कल्याण अवश्य होता है। वैर, भय, काम, स्नेह और प्रेम—इनमें एक प्रकार से भी भगवान का स्मरण मुक्तिदायक बन जाता है। राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में प्रथम पूजा किसकी हो? यह प्रश्न उपस्थित हुआ। सहदेव जी ने कहा कि भगवान कृष्ण ही सदस्यों में सर्वश्रेष्ठ और अग्रपूजा के पात्र हैं; क्योंकि कृष्ण समस्त देवताओं के देवता, सम्पूर्ण जगत के आदि कारण तथा स्वामी हैं। जगत् की समस्त वस्तुयें उनका शरीर है और वे सबकी आत्मा हैं। सभी यज्ञों के भोक्ता भी वे ही हैं। ज्ञानमार्ग, धर्ममार्ग और भक्तिमार्ग श्रीकृष्ण की प्राप्ति में कारण है। वे सजातीय विजातीय भेद से रहित हैं। सबसे महान् होने के कारण श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा होनी चाहिए। सहदेव के वचन को सबों ने समर्थन किया। इसलिए युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण का प्रथम पूजन किया।

उस सभा में शिशुपाल बैठा हुआ था, सनकादियों ने भगवान के पार्षद जय-विजय को तीन जन्म तक असुर होने का श्राप दिया था। वे प्रथम बार में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु द्वितीय बार में रावण और कुम्भकरण, तीसरे बार में शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। शिशुपाल के जन्मकाल के समय चार भुजायें और तीन नेत्र थे। आकाश-वाणी से उसकी माता को ज्ञात हो गया कि जिसकी गोद में रख देने से दो भुजाएँ और एक नेत्र समाप्त हो जायेगा उसी से यह बालक मारा जाएगा। जब भगवान श्रीकृष्ण शिशुपाल को देखने के लिए गए, तब उसकी माँ ने श्रीकृष्ण की गोद में शिशुपाल को रख दिया। भगवान की गोद में रखते ही शिशुपाल की दो भुजाएँ तथा एक नेत्र समाप्त हो गया तब उसकी माँ ने श्रीकृष्ण से कहा कि मेरे पुत्र को तुम नहीं मारना। शिशुपाल की माता श्रीकृष्ण की बुआ थीं। श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ से कहा कि एक सौ गलती तक उसे नहीं मारूँगा। राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा देखकर शिशुपाल उनकी निन्दा करने लगा। जहाँ भगवान और गुरु की निन्दा हो वहाँ नहीं रहना चाहिए। श्रीकृष्ण की निन्दा सुनकर बहुत लोग वहाँ से हट गये। श्रीकृष्ण ने सौ बार से अधिक निन्दा करने पर शिशुपाल को अपने चक्र से गला काट दिया। शिशुपाल की आत्मा एक तेज के रूप में श्रीकृष्ण में प्रवेश कर गयी। वह भगवान श्रीकृष्ण का पार्षद बन गया। युधिष्ठिर ने यह आश्चर्यपूर्ण कार्य को देखकर देवर्षि नारद से प्रश्न कर दिया कि शिशुपाल महान पापी था, उसने सदा भगवान से बैर किया, फिर भी भक्तवत्सल भगवान ने उसे मोक्ष क्यों दिया?

देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा राजन्! निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार ये शरीर के धर्म होते हैं। जिसे शरीर में अभिमान होता है उसे अपमान आदि से कष्ट होता है। भगवान श्रीकृष्ण में जीवों के समान अभिमान नहीं है। वे सर्वात्मा और अद्वितीया हैं। वे दूसरे को दण्ड कल्याण के लिए देते हैं, क्रोध वश या द्वेष वश नहीं। वे किसी को बैर, भय, स्नेह, काम और प्रेम इन पाँच प्रकारों में एक प्रकार से

भी मरते समय भगवान का स्वरूप हृदय में आ जाता है। उसे वे मुक्ति दे देते हैं। प्रेम से भी अधिक बैर और भय से भगवान का स्वरूप हृदय में आता है। शिशुपाल ने वैर भाव से भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप अपने हृदय में बैठा लिया था। अत एव मरने पर उसे श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो गयी। शिशुपाल ने वैर से, कंस पूतना आदि ने भय से, गोपियों ने काम से, यदुवंशियों ने पारवारिक स्नेह से और हम लोगों ने प्रेम से भगवान में मन लगाया है। राजा वेन ने किसी प्रकार से भगवान में मन नहीं लगाया। अत एव उसे मुक्ति नहीं मिली। जो संसार के कष्टों से सदा के लिए मुक्त होना चाहता है वह किसी प्रकार अपने मन को भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में लगा ले; परन्तु वर्तमान समय में किसी को कंस आदि के समान भगवान से वैर या भय सम्भव नहीं है। अत: उनसे प्रेम ही करना चाहिए।

कामाद् द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बध्वस्तद्गतिं गताः।। भा० ७-१-२९

गोत्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो।। भा० ७-१-३०

×*×××*××××*×

अधर्म के पाँच स्थान

जगत् को अधर्ममय बनाने की भावना से पुरुष रूप में उपस्थित कलियुग को वध करने के लिए यत्नशील राजा परीक्षित को देखकर कलि ने उनसे प्रार्थना की। उसने राजा से कहा कि आप अपने राज्य में रहने के लिए स्थान दें।

कलियुग की प्रार्थना पर राजा परीक्षित ने उन्हें रहने के लिए पाँच स्थान दिया। १. द्युत (जुआ), मद्यपान, स्त्री-प्रसङ्ग (परनारी समागम), हिंसा और सुवर्ण। ये पाँचों स्थान में अधर्म होता है। जुआ में झूठ, मद्यपान में मद, स्त्री-प्रसङ्ग में काम, हिंसा में वैर और सुवर्ण में रजोगुण के रूप में कलियुग वास करता है। द्युत आदि सभी स्थलों में पाप होते हैं। अत: कल्याण चाहने वाले पुरुषों को इन पाँचों से वचना चाहिए। धार्मिक पुरुषों, राजाओं तथा धर्मोपदेशक गुरुजनों को सावधानी से इन्हें त्याग देना चाहिए।

ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम्।
अमूनि पञ्चस्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः।। (भागवत)

यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार

जीवगत पापों को दूर करने के लिए वेदों तथा त्रिकालदर्शी तत्त्व-वेत्ता ऋषियों ने संस्कारों का विधान किया है। संस्कार का अर्थ होता है–दुर्गुणों (जीवगत मैलों) को हटाकर अच्छे गुणों को उत्पन्न कर देना। संस्कार से जीवात्मा में उत्तम गुण आते हैं। उनके दुर्गुणों तथा पापों का नाश हो जाता है। व्यास स्मृति के अनुसार १६ संस्कार ही होते हैं। सोलह संस्कार ये हैं—१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ाकरण (मुण्डन), ९. कर्णवेध, १०. उपनयन, ११. वेदारम्भ, १२. केशान्त, १३. समावर्त्तन, १४. विवाह, १५. स्मार्त अग्नि का आधान, १६. श्रौत अग्नि का आधान। अन्त्येष्टि कर्म श्रौत अग्नि साध्य है, अत: उसी में आ जाता है।

उपनयन (जनेऊ) दशवाँ संस्कार है—इसे उपनयन, यज्ञोपवीत एवं व्रतबन्ध शब्दों से भी कहा गया है। व्रतबन्ध का अर्थ है व्रतों या नियमों को करने का बन्धन। यज्ञोपवीत के दिन से ही बालक अपनी स्वेच्छा-चारिता को त्यागकर शास्त्रीय नियम में बन्ध जाता है। यह सूत्र द्विजाति को ब्रह्मतत्त्व तथा वेदज्ञान की सूचना देता है। इसलिए इसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार कब से प्रारम्भ हुआ है, इसमें यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र ही प्रमाण है—यज्ञोपवीत धारण का मन्त्र—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।

यज्ञोपवीत परम पवित्र है, यह सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी के साथ ही उत्पन्न हुआ है। यह आयु, तेज और बल को देने वाला है। इसलिए इसे अवश्य धारण करना चाहिए।

यज्ञोपवीत धारण का समय—ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार करना चाहिए। यदि किसी विशेष कारण से उपर्युक्त समय में यज्ञोपवीत नहीं किया जा सका तो उससे दोगुने अर्थात् ब्राह्मण बालक का सोलह, क्षत्रिय का बाईस और वैश्य का चौबीस वर्ष की अवस्था तक यह संस्कार अवश्य कर देनी चाहिए।

यज्ञोपवीत के काल के सम्बन्ध में शास्त्र में एक विशेष बात यह निर्दिष्ट है कि ब्राह्मण बालक का वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय बालक का ग्रीष्मऋतु में एवं वैश्य बालक का शरदऋतु में यज्ञोपवीत संस्कार करे।

यज्ञोपवीत कैसा हो—कन्धे के ऊपर से आता हुआ और नाभि का स्पर्श करता हुआ कटि तक ही पहुँचे, न इससे निम्न हो और न ऊपर। उसकी मोटाई सरसों की फली की तरह होनी चाहिए। उससे अधिक मोटा यशनाशक और पतला धन नाशक होता है। ९६ चब्बे का यज्ञोपवीत होने पर यह व्यवस्था ठीक बैठती है। यही कारण है कि ९६ चब्बे का ही यज्ञोपवीत बनाया जाता है। ब्रह्मचारी के लिए एक यज्ञसूत्र और दूसरे दोनों (गृहस्थ-वानप्रस्थ) के लिए दो यज्ञसूत्र कहे गये हैं। संन्यासियों के लिए एक ही यज्ञसूत्र होवे।

१.९६ चब्बे का ही यज्ञोपवीत क्यों?—गायत्री में चौवीस अक्षर हैं। चारों वेदों में गायत्री है, अत: सम्पूर्ण मिलाकर २४ × ४ = ९६ अक्षर हो जाते हैं।

चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी ।
तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत् ।। (स्मृतिः)

१. हमारा शरीर २५ तत्त्वों से बना हुआ है। सत्व, रज और तम इन गुणत्रय से यह सर्वदा व्याप्त रहता है। फलतः २८ संख्यात्मक समुदाय वाला यह शरीर तिथि नक्षत्रादि विविध भागों में विभक्त अनेक संवत्सर पर्यन्त इस संसार में जीवन धारण करता है। यह जीवन लक्ष्यहीन नहीं है। जीवन के एक-एक क्षण को प्रभु का वरदान समझने वाले महर्षियों ने इसका सर्वात्मना सदुपयोग किया और ईश्वरीय ज्ञान वेद का अवलम्बन करके ब्रह्म प्राप्ति का शाश्वत लक्ष्य मनुष्य के सामने रखा। अब यदि उपर्युक्त सभी पदार्थों की संख्या का समन्वित योग किया जाय तो यह जानकर आश्चर्य होता है कि वह भी ९६ ही होता है, यथा—तत्त्व २५, गुण ३, तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २७, वेद ४, काल ३, मास १२ इन सबका जोड़ ९६ हुआ। सामवेद छान्दोग्य परिशिष्ट में इसी अभिप्राय को लेकर ९६ चब्बे की वैज्ञानिकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

तिथि वारञ्च नक्षत्रं तत्त्ववेदगुणान्वितम् ।
कालत्रयं मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम् ।।

यज्ञोपवीत त्याग से हानि—जिस दिन यज्ञोपवीत संस्कार हो उस दिन से मृत्युपर्यन्त शरीर से यज्ञोपवीत अलग नहीं होना चाहिए। चिता में भी वह शरीर के साथ ही रहता है। आज इस नियम की ओर भी लोग उदासीन होते जा रहे हैं। यज्ञोपवीत को कभी भी गले से नहीं निकाले। कभी इसे खूँटी या ऐसे ही अन्य जगह पर नहीं रखें। सन्तान उत्पन्न होने पर या किसी सगोत्रीय व्यक्ति के मर जाने पर, बाल बनवाने पर तथा चाण्डाल के स्पर्श करने पर नवीन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। टूट जाने पर, शरीर से नीचे गिर जाने पर, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणादि के अनन्तर यज्ञोपवीत को अवश्य बदल लेना चाहिए। जो शास्त्र के विधान से यज्ञोपवीत को नहीं धारण करता है, उसके तप, ज्ञान तथा सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। तर्क का अवलम्बन करने वाले जो अज्ञान से यज्ञोपवीत का परित्याग कर देते हैं वे स्वर्ग (मोक्ष) के मार्गों से गिर जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी भी यज्ञोपवीत के परित्याग कर देने से अपने स्वरूप से गिर जाते हैं, इसलिए कभी भी किसी स्थिति में यज्ञसूत्र का परित्याग नहीं करना चाहिए।

गृह्यसूत्रकारों ने मल-मूत्रत्याग के समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर लपेटने का विधान किया है। इसका कारण यह है कि दाहिने कान में आदित्य वसु आदि देवताओं का निवास स्थान बतलाया गया है। इसलिए दाहिने कान की पवित्रता तथा महत्ता के अभिप्राय से ही पूज्य महर्षियों ने यज्ञोपवीत को उस दशा में जबकि सम्पूर्ण शरीर ही अपवित्र होता है, पवित्रता के सबसे महान् केन्द्र कान पर रखने का विधान किया है।

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र क्यों?—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों के लिए यज्ञोपवीत धारण का विधान, प्रधान देवता तीन, गार्हपत्य, आवाहनीय दक्षिण-अग्नि तीन ऋग,यजु, साम प्रधान वेद तीन रहने से यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं। तीन सूत्र निर्मित यह उपवीत विधिपूर्वक बनाने पर नव तन्तुमय हो जाता है। यह नवों तन्तु साधारण तन्तु नहीं, किन्तु विभिन्न देवताओं के आवास स्थान होते हैं।

×*********×

माला धारण विधि

सन्ध्या वन्दन, पूजा-पाठ, जप तथा कीर्तन के समय में गले में तुलसी तथा कमलाक्ष की माला धारण करना आवश्यक बतलाया गया है। उससे मन में एकाग्रता तथा भगवान के प्रति प्रेम बनता है। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—

पूजाकाले हरिध्याने सन्ध्यादि वन्दने तथा ।

तुलसीधार्यते कण्ठे ते भक्ता हरिवल्लभाः ।। (भारद्वाज संहिता)

जो पूजाकाल में, नारायण के ध्यान में तथा सन्ध्यावन्दन में तुलसी की माला गले में धारण करते हैं, वे नारायण के प्रिय होते हैं।

श्रवणेकीर्तने चैव मन्त्रजाप्ये च वैष्णवैः ।

धार्यते तुलसी कण्ठे महाभागवतोत्तमैः ।। (भारद्वाज संहिता)

उत्तम महाभागवत श्रीवैष्णवजन, भगवान की कथा सुनने तथा कहते समय कीर्तन में तथा मन्त्र जप के समय तुलसी की माला गले में धारण करते हैं।

तुलसी देवपूजायां जाप्यकाले तथैव च ।

पूजने स्मरणेचैव अन्यकाले न धारयेत् ।। (वामन पुराण)

नारायण देव की पूजा में मन्त्र जप के समय तथा भगवान के स्मरणकाल में ही तुलसी माला को धारण करे। दूसरे समय धारण नहीं करे।

शिखा एवं यज्ञोपवीत की तरह ऊर्ध्वपुण्ड्र चन्दन सदा धारण करें। जैसे राजागण विशेष समय में ही चँवर, छत्र धारण करते हैं, उसी प्रकार तुलसी की माला पवित्रावस्था तथा जप-पूजन के समय में ही धारण करें। स्नान, भोजन, शयन, लघुशङ्का और शौच काल में माला धारण न करें।

उर्ध्वपुण्ड्रं सदाधार्यं शिखा यज्ञोपवीतवत् ।

तुलसीमालिका चैव राज्ञां चामरच्छत्रवत् ।। (नारद पाञ्चरात्रे)

जो मानव जप-होम-व्रत आदि कर्मों में कमलाक्ष की माला को धारण करता है वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है।

पद्माक्षं धारयेद्यस्तु जप-होम-व्रतादिषु ।

सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णु लोके महीयते ।। (वामन पुराण)

****

जप-विधि

भगवान श्रीकृष्ण ने यज्ञों में जप यज्ञ को श्रेष्ठ कहा है। मनु ने जप द्वारा मनुष्य को सिद्धि मिलती है ऐसा बताया है। अत एव ऋषि-महर्षियों ने सन्ध्या-वन्दनादि के समय 'ओम् नमो नारायणाय' इस मूल मन्त्र का तथा गायत्री मन्त्र का जप करने के लिए कहा है। जप करने से अन्त:करण में निर्मलता आती है और उससे तेज बढ़ता है।

श्रीवैष्णवों को तुलसी या कमलाक्ष की माला पर जप करना चाहिए। उनके लिए रुद्राक्ष की माला निषिद्ध है। अत: न उसे धारण करें औन न उस पर जप करें। शास्त्रों में जप तीन प्रकार के बताये गये हैं। वाचिक, उपांशु और मानस। तीनों प्रकार के जपों का विधान अलग-अलग है। वाणी से जप करने से दस गुणा फल, उपांशु (ओठ हिले परन्तु दूसरा मनुष्य शब्द न सुन सके वह) जप करने में सौ गुणा फल तथा एकाग्रतापूर्वक मन में जप करने में जिसमें जिह्वा भी न हिले, हजार गुणा फल होता है। प्रथम वाचिक जप, द्वितीय उपांशु और तृतीय मानस जप है। इन तीनों जपों में मानस जप सर्वोत्तम है। जप करते समय (माला को) वस्त्र से छिपाकर जप करना चाहिए। मन्त्र जप के समय माला को तर्जनी तथा कनिष्ठा से स्पर्श न करें, न माला को अधिक डुलावें। प्राय: बायें हाथ से भी स्पर्श न होने दें।

जपते समय यदि भूल या असावधानी से माला नीचे गिर पड़े तो १०८ बार अधिक जप करे। जप के समय मौन रहना चाहिए। मन्त्र-प्रतिपाद्य-देव और मन्त्राधिष्ठाता देव के स्वरूप को ध्यान करते हुए जप करना चाहिए।

माला के अभाव में कभी-कभी अङ्गुली पर भी जप किया जा सकता है, जिसे कर माला कहते हैं। अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ करके नीचे के पर्व से होते हुए कनिष्ठा अङ्गुली के निम्न पर्व से जपते हुए ऊपर की ओर तर्जनी के अन्तिम पर्व तक जाय, पुन: तर्जनी के नीचे के पर्व से ऊपर की ओर होते हुए अनामिका के मध्य पर्व तक पहुँच जाय। मध्यमा अङ्गुली के नीचे के दो पर्व पर अङ्गुली नहीं जानी चाहिए न उसका उल्लङ्घन करें।

शुक्राचार्य का वचन

न्याय से उपार्जित धन को पाँच भागों में बाँटकर व्यय करने से इस लोक और परलोक में भी मानव सुखी रहता है। जैसे- सौ रुपया प्राप्त होने पर २० रुपया धर्म में, २० रु० यश के काम में, २० रुपया धन बढ़ाने में, २० रुपया परिवार में और २० रुपया अपने में खर्च करे।

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजनवित्तमिहामुत्रच मोदते।।

‘वरदवल्लभा-स्तोत्र’ का अनुशीलन

-**डॉ० राजदेव शर्मा,** लक्ष्मीनारायणमन्दिर,
लखीबाग, गया (बिहार)

समस्त भक्ति-साधनों का पर्यवसान युगलोपासना में हो जाता है, यह प्राय: सभी वैष्णवाचार्यों ने स्वीकार किया है। जब एक ही तत्त्व लीला-वैचित्र्य में द्विधा विभक्त होकर भक्तों का उपास्य या आराध्य बन जाता है, तब उसकी संज्ञा ‘युगलोपासना’ हो जाती है। शक्ति के साथ शक्तिमान अथवा श्री-विशिष्ट भगवान ही यहाँ उपास्य होता है। शास्त्रों में माता को पिता से दशगुणा अधिमान्य माना गया है। अत एव प्राय: सभी सम्प्रदायों के साधक भगवान के पूर्व भगवती (श्री) की शरण में जाते हैं। ऐसा करने के पीछे कुछ ठोस आधार एवं युक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रभु स्वयं साध्य हैं और अपनी प्राप्ति के साधन भी, तथापि श्रीजी वात्सल्य, करुणादि गुणों के आधिक्य के कारण जीवों के दोषों एवं अपराधों को क्षमा करने के लिए भगवान से आग्रह करती हैं। अवसर मिलने पर वह दीन-हीन-मलिन की बातों को प्रभु के समक्ष रखती हैं और उनमें करुणा-गुण को उद्दीप्त करती हैं। श्रीजी के इस कृपा-विशेष का नाम ‘पुरुषकार’ है। इस पुरुषकार के कारण ही भक्तगण श्रीजी के माध्यम से नारायण तक पहुँचते हैं। अत: पहले पुरुषकार पर विचार करना आवश्यक है।

नारद पञ्चरात्र में भगवद् वचन है—संसार में अध:पतित पापी जीवों को मेरी प्राप्ति के लिए महर्षियों ने श्रीलक्ष्मी को पुरुषकार कहा है और मेरा भी यही मत है। मैं लक्ष्मीपति अपनी प्राप्ति में स्वयं उपाय हूँ और मेरी प्रिया लक्ष्मी अपने पुरुषकार से मेरी प्राप्ति का योग कराने वाली हैं—

अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपति: स्वयम्।
लक्ष्मी: पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्तियोगिनी।।

श्रीगुणरत्नकोष में जानकी जी के पुरुषकारत्व की रीति का निर्देश करते हुए कहा गया है—हे माता! पापी-अधम जीवों के विषय में हित-कामना से (पिता के समान) आपके स्वामी (रामजी) कभी कूपित हो जाते हैं। उस समय आप अपने पति से पूछली हैं—इस जगत् में अपराधरहित कौन है? इन वचनों से जीवों के अपराधों को श्रीराम के चित्त से भुलवाकर उन्हें अपनाती हैं। इस कारण से आप हमलोगों की माता हैं।

माता जानकी को अनुकूल करने के लिए कोई साधन की आवश्यकता नहीं है। वह अपनी सन्तान पर स्वभावत: दया करती हैं। वह केवल प्रणाम करने से प्रसन्न हो जाती हैं—प्रणिपात प्रसन्ना हि मैथिली। वह तो निष्कारण प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करती हैं। भगवान श्रीकृष्ण अपनी प्रतिज्ञा (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज) में दो बातों का निर्देश करते हैं—(१) अन्य उपायों का त्याग और (२) उनकी शरण में जाना। इन उपायों को मुमुक्षु करे तभी वह भगवत्कृपा का अधिकारी हो सकता है। श्रीराम भी अपनी प्रतिज्ञा (सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मिति च याचते) में प्रपन्न होने और ‘मैं तुम्हारा हूँ’ यह कहने की शर्त रखते हैं। परन्तु जनकनन्दिनी तो विना प्रणाम निवेदित किए ही राक्षसियों की रक्षा करती हैं। अत: पञ्च-स्तवीकार कहते हैं—हे माता मैथिलि! तूने कृपा-कारुण्य गुणों में रामजी की गोष्ठी को लघु बना दिया।

श्रीजी की अपरिमित महिमा का उल्लेख सभी वैषणव दर्शनों में उपलब्ध है। विशिष्टाद्वैत के जनक और श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवान रामानुजाचार्य ने अपने 'शरणागति गद्य' में श्रीजी की प्रपत्ति की है। द्वैताद्वैत दर्शन एवं सनकादि सम्प्रदाय के संस्थापक निम्बार्काचार्य सर्वेश्वर कृष्ण के साथ उनके समान रूप-गुणवाली परमाह्लादकारिणी शक्ति वृषभानुनन्दिनी को उपास्य मानते हैं। द्वैतदर्शन एवं ब्रह्मसम्प्रदाय के आचार्य मध्वाचार्य लक्ष्मी और विष्णु की उपासना करते हैं। शुद्धाद्वैत दर्शन एवं रुद्र सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य अचिन्त्य चिच्छक्ति राधा का स्तवन करते हैं। सुखद आश्चर्य तो यह है कि अद्वैतदर्शन के पोषक एवं सम्वर्द्धक आद्यशङ्कराचार्य जी अच्युताष्टक, जगन्नाथाष्टक आदि कृतियों में राधा की शरणागति ग्रहण करते हैं। प्राय: सभी वैष्णवाचार्यो ने श्री के ऐश्वर्य-माधुर्यादि पर विपुल स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं। इनमें यामुनाचार्य का वरदवल्लभास्तोत्र विलक्षण है। चार श्लोकों में उपनिबद्ध होने के कारण यह 'चतुश्श्लोकी' नाम से सुख्यात है। इन चार श्लोकों में क्रमश: श्रीजी का शेषित्व, उनकी असीम करुणाशीलता, पुरुषार्थ-प्राप्ति में हेतुता और उनका प्रधान प्राप्यत्व वर्णित है। इसका प्रथम श्लोक है—

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिश्शय्याऽऽसनं वाहनं,
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका मयाजगन्मोहिनी।
ब्रह्मेशादि सुरव्रजस्सदयितस्त्वद्दासदासीगणः,
श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम्।।

अर्थात् हे भगवति! आपके प्रियतम पति पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायण हैं। आपकी शैय्या शेषनाग हैं। आपका आसन एवं वाहन वेदात्मस्वरूप गरुड़ हैं। आपका परदा जगत् को मुग्ध करने वाली माया है। ब्रह्मा-शिवादि देवगण एवं उनकी पत्नियाँ आपकी सेवा में निरत रहती हैं। हे देवि! आपका नाम सर्वोत्कृष्टता का व्यञ्जक 'श्री' है। इतनी महिमाशालिनीदेवी की स्तुति हम अल्पज्ञ कैसे करें?

उपर्युक्त श्लोक का एक-एक अक्षर सारगर्भित और व्याख्येय है। अतएव इस पर विचार करना अपेक्षित है। कान्त: ते—

'कान्त' शब्द का अर्थ है—प्रिय, मनोरम, प्यार करने वाला आदि। इस शब्द को 'विष्णु' के अर्थ में रूढ़ कर दिया गया है। 'ते' अक्षर का अर्थ है श्रुति, स्मृति, वेद-पुराणादि से प्रमाणित प्रसिद्ध पुरुष। अत एव 'कान्तस्ते' पद का भावार्थ है—श्रुत्यादि प्रमाणों से सिद्ध भगवान विष्णु आपके पति हैं। वे सर्वथा आपके अनुरूप हैं। अनुरूपता का अर्थ है शी, वय, चरित्र, कुल और शुभ लक्षणों में समरूपता का होना। महर्षि 'वाल्मीकि' सीता और राम की समरूपता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि शील, वय, चरित्र, कुल और शुभ लक्षणों में वैदेही राम की भार्या और राम उसके पति होने के योग्य हैं—

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा।। (५।१६।५)

इसी प्रकार लक्ष्मी के अनुरूप ही उनके पति श्रीमन्नारायण हैं। वे समस्त मङ्गलों के अवस्थान एवं असीम यज्ञ के भाजन हैं। वे लोक और वेद में 'पुरुषोत्तम' नाम से अभिख्यात हैं। गीतोक्त उपदेशों के

अनुसार क्षर (बद्ध जीव) और अक्षर (मुक्त जीव) दोनों से जो उत्तम है, उसे पुरुषोत्तम कहा जाता है। व्याकरणिक दृष्टि से पुरुषेभ्य: उत्तम:, पुरुषाणां उत्तम: और पुरुषेषु उत्तम: आदि कहकर 'पुरुषोत्तम' शब्द का निर्वचन किया जाता है। इससे यह ध्ववनित होता है कि ब्रह्मा, शिवादि देवगण भी पुरुषोत्तम लक्ष्मी पति से अवर ही हैं। तब फिर समस्त देवों की पत्नियों से पुरुषोत्तम की पत्नी (लक्ष्मी) की श्रेष्ठता स्वत: सिद्ध हो जाती है। अवतार-काल में भी वह (सीता के रूप में) नारियों में उत्तम-नारीणामुत्तमावधू: सिद्ध होती हैं।

फणिपति शैय्या—इन पदों से लक्ष्मी का उत्कर्ष द्योतित होता है। शेषनाग की गणना नित्यसूरियों में की जाती है। वह भी इनकी शैय्या बनकर अपने को धन्य मानते हैं। महाभारत आदिपर्व में नागों की कद्रू से उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। नागों में सर्वप्रथम शेषनाग का जन्म हुआ—शेष: प्रथमो जातो। वर्णन आता है कि आदिशेष अपनी माता एवं अन्य भाइयों को छोड़कर बदरिकाश्रम चले गए और वहाँ उन्होंने घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने यह वरदान दिया—तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में स्थित रहे। ब्रह्माजी की आज्ञा से ही शेषनाग ने हिलती-डुलती हुई पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किया। आदि शेष के प्रभाव का वर्णन करना सम्भव नहीं है। कल्प के अन्त में शेषनाग के मुख से विष की अग्नि-ज्वाला निकलती है, जिससे सङ्कर्षणात्मक रुद्र की उत्पत्ति होती है। वह रुद्र तीनों लोकों को खा लेता है। वह सम्पूर्ण भू-मण्डल को सिर पर धारण करने के कारण देवों से पूजित होते हैं। उनका स्थान पाताललोक है। इनके वीर्य, प्रभाव, रूप, स्वरूपादि का देवता भी वर्णन नहीं कर सकते हैं। ऐसी महान् विभूति भी महालक्ष्मी की शैय्या बनकर सतत सेवा करती हैं। यही श्रीजी का उत्कर्ष है।

आसनम्—इस शब्द का अन्वय काकाक्षिन्याय से फणिपति और विहगेश्वर दोनों के साथ करना समीचीन है। कौवा एक ही आँख से दोनों तरफ देखता है। इसे ही काकाक्षिन्याय कहा जाता है। इस प्रकार एक 'आसन' शब्द फणिपति और गरुड़ दोनों के लिए प्रयुक्त है।

विनितानन्दन गरुड़ पक्षियों में श्रेष्ठ हैं। वे नागों के भक्षक, दैत्यों एवं राक्षसों के शत्रु एवं देवताओं के हितैषी हैं। उन्होंने देवताओं को हराकर अमृत प्राप्त किया। अमृत लेकर लौटते समय उन्हें रास्ते में विष्णु से भेंट हुई। विष्णु ने देखा कि वे अमृत लिए हुए हैं; परन्तु पी नहीं रहे हैं। उनके लोलुपतारहित पराक्रम से प्रसन्न होकर विष्णु ने दो वरदान दिए। गरुड़ ने माँगा—प्रभो! मैं आपके ऊपर ध्वज में स्थित होऊँ और अमृत पीये विना ही अजर-अमर हो जाऊँ। तदनन्तर गरुड़ ने भगवान से कहा कि आप भी मुझसे वरदान माँग लीजिए। विष्णु ने महाबली गरुत्मान से अपना वाहन होने का वर माँगा। तब से गरुड़ भगवान विष्णु के वाहन बन गए।

वेदात्मा विहगेश्वर:—तीनों वेदों का नाम गरुड़ है। वेद परमात्मा को वहन करते हैं, इसलिए उनका नाम 'वाहन' है। वेद गरुड़ के पर्याय स्वीकार किए गए हैं। जैसे वेद परमात्मज्ञान है, वैसे ही गरुड़ अखण्ड ज्ञान सम्पन्न माने जाते हैं। उन्हें 'सर्ववेदमयविग्रह' कहा जाता है। भागवत तृतीय स्कन्ध में कहा गया है कि गरुड़ के पंखों से सामवेद की ध्वनि निकलती है। वेदों के अभिमानी देवता गरुड़ हैं। वेदों के अभिमानी देवता होने के कारण वेदों की आत्मा हैं गरुड़। **........ शेष पृ० २१ पर**

गुरुवर-महिमा

-डॉ० मनोज कुमार
व्याख्याता, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
जी०जे० कॉलेज, रामबाग, बिहटा, पटना

भारतीय संस्कृति में गुरुजनों की महिमा पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। इसकी रचना में गुरुजनों का महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय योगदान रहा है। जीवन के हरेक क्षण में जनता उनकी कृपादृष्टि की आकांक्षिणी रही है। नामकरण से लेकर मृत्यु संस्कार तक उनके निर्देशन में सम्पादित होते हैं। अपनी सारी समस्याओं के समाधानार्थ भी लोग गुरुओं के पास जाते हैं। अत: प्रत्येक परिवार एवं कुल का कोई न कोई कुलगुरु होता रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के कुलगुरु वशिष्ठ थे तो विद्यागुरु विश्वामित्र, लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के विद्यागुरु संदीपनी थे। कौरवों एवं पाण्डवों के विद्या गुरु आचार्य द्रोण थे। हिन्दूओं में कुल देवता की परम्परा चली आ रही है। प्रत्येक परिवार का कोई न कोई कुलगुरु है। आचार्य को देवता के समान बतलाते हुए उपनिषद् में कहा गया है—'आचार्य देवो भव' गुरु को सुसंस्कारों के रचनाकार होने के कारण ब्रह्मा कहा गया है, सृष्टि के पालक के कारण विष्णु कहा गया है एवं अशुभ संस्कारों, कुवृत्तियों एवं अन्तर्विकारों को दूर करने के कारण उसे शङ्कर कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

हिन्दू संस्कृति में गुरु को देवत्व के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है।

'गुरु' शब्द के 'गु' का अर्थ होता है 'अन्धकार' एवं 'रु' का अर्थ होता है 'निरोध्यते' अर्थात् सच्चा गुरु शिष्य के ज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञानालोक को भरता है, कहा भी गया है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (Lead me from darkness to light)। आदर्श गुरु ज्ञान की ज्योति सदैव फैलाता है। इस सन्दर्भ में रूफिनी का कथन शत-प्रतिशत सत्य एवं प्रासङ्गिक प्रतीत होता है—The Teacher is like the candle which lights others in consuming itself. अर्थात् सच्चा गुरु उस मोमबत्ती के समान है जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है।

कबीरदास निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्त्तक थे वे भी गुरु की महिमा का गान किये हैं। जब भक्त के पैर साधना के दुर्गम मार्ग पर लड़खड़ाने लगता है तब वह सांसारिक सुखों के मोह में आसक्त होकर अपने प्रभु को भी पहचानने में समर्थ नहीं रह जाता है, तब सच्चा गुरु ही उसे गोविन्द को पहचानने की दिव्य दृष्टि देता है, इस सन्दर्भ में कबीरदास जी ने कहा भी है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।।

सच्चा गुरु अपने चिन्तन की चारुता से चरित्र को आलोकित करता है। वह देवाधिदेव शिव की तरह गरल वरणकर अपने शिष्य को सुधा प्रदान करता है एवं गुणों का ग्राहक बनाकर गुण-ग्रहण के

लायक बनाता है। कविवर कबीर का एक दोहा उदाहरणीय है, जिसमें गुरु की महिमा पर प्रकाश डाला गया है—

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

मानव शरीर विष का भण्डार है लेकिन सच्चा गुरु अमृत की खान होता है। सिर देने के बाद भी यदि सच्चा गुरु उपलब्ध हो जाय, तो उसे सस्ता समझना चाहिए।

वनवास के बाद अयोध्या लौटने पर भरे दरबार में किसी ने श्रीराम से प्रश्न किया—विश्व को आतङ्कित करने वाला महाबली दशानन एवं उसके दुष्ट अनुजों का दलन आपने कैसे किया? भगवान ने इस दुष्कर कार्य की सम्पन्नता का श्रेय गुरु को ही दिया— ***'गुरु वशिष्ट कुल पूज्य हमारे इन्हि कृपा दनुज रण मारे'***।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के आरम्भ में ही तीसरे श्लोक में गुरु की महिमा का गान किया है एवं उन्हें शङ्कर स्वरूप बतलाया है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कर रूपिणम्[१]।

मानसकार ने आगे भी गुरु के सम्बन्ध में कहा है—

बंदौ गुरु-पदकञ्ज कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकरनिकर[२]।।

यथार्थत: सच्चा गुरु नर रूप में नारायण ही होते हैं, जिनके प्रत्येक शब्द में दिनकर का प्रखर प्रकाश होता है, गुरु की महिमा अपरम्पार है। उसमें अलौकिक शक्ति होती है। मानसकार ने अलौकिक शक्ति के कारण ही गुरु की चरण धूलि से अपने मन मुकुर की मलिनता मिटाने की सीख दी है—

जनमन मञ्जु मुकुर मल हरनी।
किये तिलक गुण गन बस करनी[३]।।

वह तो अमरत्व प्रदान करने वाली सञ्जीवनी है, जो सभी सांसारिक आधि एवं व्याधि नष्ट करती है—

अमिय मूरिमय चूरन चारु। समन सकल भवरुज परिवारू[४]।।

वह भगवान शङ्कर के तन की दिव्य विभूति हैं, जो सुन्दर हैं, मङ्गल एवं मोददायिनी हैं—

सुकृति संभुतन विमल विभूती। मञ्जुल मङ्गल मोद प्रसूती[५]।।

ऐसे ज्ञानी गुरुओं की असीम कृपा से अन्तर्मन की बन्द आँखें खुल जाती हैं एवं मोह निशा के सांसारिक दोषों एवं दु:खों का दलन सदा के लिए हो जाता है—

उधरहि विमल विलोचन हीके। मिटहि दोष-दु:ख भव रजनीके[६]।।

गुरु के ऋण से शिष्य कभी उऋण नहीं हो सकता, वह हमारी पशुता मिटाकर हमें सच्चा मानव बनाता है। हमें क्षमा, दया, ममता, प्रेम, परोपकार एवं सहानुभूति के दैवी गुणों से परिचित कराता है।

प्राचीनकाल में आचार्यों का अत्यधिक आदर था, उनके चरणों पर बड़े-बड़े धनुर्धर उनके समक्ष नतमस्तक हुये हैं। आचार्य वरतन्तु के समझ महाराज रघु ने अपना माथा टेका था, आज उनका समाज में आदर अल्प हो गया है। अत: सम्प्रति अपने प्राचीन गौरव को पुनर्स्थापित करने के लिए आचार्यों को साधक एवं चिन्तक बनना पड़ेगा। उनकी विश्वसनीयता का लोप हो गया है, अपने पावन कर्मों एवं पुनीत चरित्र से आस्था के दीपक जलाने होंगे। प्रतिभा की आराधना करनी होगी एवं समाज में कदाचार का उन्मूलनकर, छात्रों में सुमति का संस्कार जागृत करना होगा, तभी हम अपनी गरिमा को प्राप्त कर सकते हैं। सत्य ही कहा है—

O my God!
Please love my country
Make students disciplinarian
Bless us with bright future
O my God!

आदर्श अध्यापक अपने शिष्यों के कल्याणार्थ सबकुछ करने के लिए तत्पर रहता है। जिस प्रकार कुम्भकार बाहर से घड़े को ठोकता है, पीटता है एवं भीतर से हाथ का सहारा देकर खोट निकालकर लोकोपकारी घट का निर्माण करता है, उसी प्रकार कुशल एवं सफल गुरु अन्दर से अपनी सहानुभूति का सहारा देता हुआ, ऊपर से जरुरत पड़ने पर वर्जना करता हुआ अपने शिष्य का शुभ-निर्माण करता है। इस सन्दर्भ में कबीर दास जी ने कहा है—

गुरु कुम्हार सिखकुंभ है, गढ़ि-कढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर-बाहर चोट।।

शिष्य ही राष्ट्र के भावी कर्णधार होते हैं, वे उसके सुदृढ़ निर्माता होते हैं। उनके चरणकमल पर बड़े-बड़े राजाओं ने माथा टेका है। बड़े-बड़े धनुर्धर उनके सामने नतमस्तक हुये हैं। दरअसल महान वहीं है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों के चक्रवात में भी अपनी निष्ठा के दीपक को बुझने नहीं दे, प्रलोभन के प्रभञ्जन में भी अपने आदर्श के परचम को झुकने न दे।

सन्दर्भ-सङ्केत-

१. कबीर दास
२. गोस्वामी तुलसीदास-मानस, बालकाण्ड-पृष्ठ-३३
३. वही, पृष्ठ-३४
४. वही, पृष्ठ-३५
५. वही, पृष्ठ-३५
६. वही, पृष्ठ-३५
७. कबीर दास

श्रीराम विवाह-प्रसङ्ग का रहस्य

वैकुण्ठवासी श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज

अनुरूप वर दुलहिनि परस्पर लखि सकुचि हियँ हरषहीं ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं ।।
सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं ।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ।।

यह श्रीराम जी के विवाह काल का प्रसङ्ग है। विवाह-मण्डप में दशरथ जी के सामने चारों वर तथा चारों दुलहिन विरामान हैं। ऋषि, महर्षि, देवगण, जनकपुरवासी, अयोध्या के वसिष्ठादि महर्षियों की तथा अन्यान्य दर्शकों की अपार भीड़ है। सभी लोग चर्मचक्षु तथा दिव्य चक्षुओं से दर्शन का लाभ उठा रहे हैं।

भगवान श्रीराम एवं जनकनन्दिनी सीता जी के ऐश्वर्य और माधुर्य रस का अवलोकन सब लोग कर रहे हैं। जनकपुर वासी प्रेम से भगवान के केवल माधुर्य रस पान कर तृप्त हो रहे हैं। श्रीराम जी श्यामल मूर्ति हैं।

नील सरोरूह नीलमनी, नील नीरधर स्याम ।
अङ्ग अङ्ग पर वारिये कोटि-कोटि सतकाम ।।

जिनसे नीलकमल ने कोमलता, नीलमनि ने कान्ति और नील मेघ ने शोभा प्राप्त की है, जिनके अङ्ग-अङ्ग की शोभा के सामने करोड़ों कामदेव की शोभा फीकी पड़ जाती है, जिनसे मर्तकमणि ने कान्ति प्राप्त की है, जिनका तेज अप्रमेय है, जो सबका परम प्रकाशक तथा सूर्य चन्द्रमा आदि को प्रकाशित करने वाले हैं, जिनकी मूर्ति माँस मेदादि प्रकृति रचित नहीं है, जिनका वर्णन करने में मन और वाणी समर्थ नहीं होती, वे श्रीराम परमब्रह्म हैं। श्रीमती सीताजी सोना के समान कान्ति वाली हैं, उनके प्रकाश से सूर्य, चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं, उनकी अतुलित छवि है, वे अपरमित दिव्य गुणों से युक्त हैं। जगत् कल्याण के लिए जगत् माता जानकी तथा जगत् पिता श्रीराम का अवतार हुआ है।

'रामरूपेऽभवत सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि' के अनुसार श्रीरामावतार में लक्ष्मी जी सीता स्वरूप में प्रकट हुई हैं। वे श्रीराम की शोभा को बढ़ाती हैं। श्रीलक्ष्मी जी भगवान को अत्यन्त प्रिय हैं। अत एव उनकी प्राप्ति के लिए ही श्रीराम ने धनुष तोड़ा है।

जब जनकपुर में श्रीराम और सीता एक मण्डप में विराज रहे हैं, ब्रह्मादि सभी देवों का यह विचार कर अपार हर्ष हो रहा है कि ब्रह्म का अवतार तो बहुत बार हुआ; किन्तु विवाह तो इसी अवतार में प्रथम बार ही हो रहा है, जो हम सबों को देखने को मिला। जिनको अवतार लेने के लिए हम सब देवों ने प्रार्थना की है वे ही आज हम सबों के सामने उपस्थित हैं।

विवाह मण्डप में दशरथ जी के सामने चारों बधुओं के साथ चारों बर उसी प्रकार विराज रहे हैं जैसे जीव के हृदय में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चारों अवस्थायें अपने-अपने विभु के साथ विराजती हैं। विभु का अर्थ व्यापक और पति दोनों है। जाग्रत अवस्था के विभु (अभिमानी देव) प्रद्युम्न, स्वप्नावस्था के सङ्कर्षण, सुषुप्ति अवस्था के अनिरुद्ध और तुरीय अवस्था के वासुदेव हैं। जागृत अवस्था का व्यापार सम्पूर्ण देह मन इन्द्रियों का, स्वप्नावस्था का व्यापार, केवल मन का, सुषुप्ति अवस्था का व्यापार वासना मात्र और मुक्ति अवस्था का व्यापार दिव्य देह, ज्ञान और दिव्य इन्द्रिय का है। इस अवस्था में श्रीमन्नारायण से योग होता है। इस विवाह प्रसङ्ग में तुरीयावस्था श्रीजानकी जी हैं और विभु (पति) श्रीराम जी हैं। जाग्रत अवस्था माण्डवी हैं और विभु भरत जी हैं। स्वप्नावस्था उर्मिला हैं और विभु लक्ष्मण जी हैं। सुषुप्ति अवस्था श्रुतिकीर्ति हैं और विभु शत्रुघ्न जी हैं। तुरीय अवस्था में संसारी वस्तु और अपना शरीर पर्यन्त भी भूल जाता है। जैसे ध्रुव को हुआ था ***'तस्थौ स्थाणुरिवाचलः'*** भगवान में ध्यान लगाए ध्रुव जड़ की तरह दिखते थे। इसी अवस्था को जीवन्मुक्त और पञ्चम पुरुषार्थ भी कहते हैं। अर्थात् इस अवस्था में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अलावा भगवान का विलक्षण अनुभव प्राप्त होता है। 'को हम कहा विसरि तनु गये' जैसे ब्रह्म प्राप्ति से ब्रह्मानन्द सुख मिलता है वही आनन्द सुख इस अवस्था में भी मिलता है।

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ।।
स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।।

इस प्रकार तुरीयावस्था को मुक्ति अवस्था कहते हैं। यही अवस्था प्राप्त करना पूर्ण भक्ति का फल है; क्योंकि यहाँ से मुक्त होकर भी त्रिपाद्विभूति में भी भक्ति ही की जाती है। इसलिए इसको मुक्ति अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने वाले व्यक्ति से बढ़कर दूसरा कोई व्यक्ति नहीं। इसी अवस्था में आत्मसत्ता लाभ होता है, इसलिए देवता, ज्ञानी आदि इसके लिए तरसते रहते हैं।

पृ० १६ का शेष

शेषनाग और गरुड़ दोनों का एकस्थ होकर रहना यह सूचित करता है कि परस्पर विरुद्ध जाति के जीवों से लक्ष्मीजी सेवित होती हैं। यह उनका उत्कर्ष है। दूसरा विन्दु है कि शेष और गरुड़ दोनों ही नित्य मुक्त हैं। जब नित्यमुक्त जीवों से लक्ष्मी सेवित होती हैं तो फिर अन्य सुरियों का क्या कहना! कैमुत्यन्याय से यह सिद्ध होता है कि लक्ष्मी जी सभी की आराध्य हैं। जब बड़े आदमी की यह दशा है तो छोटे व्यक्तियों का क्या कहना, इसे कैमुत्यन्याय कहा जाता है। इसीलिए 'वैकुण्ठगद्य' में कहा गया है कि शेषादि सर्वपरिजन और सूरिगण भगवान के समक्ष हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और उनकी आज्ञा मानते हैं। अतः सभी नित्य विभूतियाँ श्रीजी के अधीन हैं।

प्रसङ्गाधीन स्तोत्र के अन्य शब्दों की व्याख्या अगले अङ्क में प्रस्तुत की जायेगी।

इति शुभम्

बालकों को सदाचार की शिक्षा दें

वेदों एवं स्मृति आदि शास्त्रों में मानव को सुसंस्कृत बनाने के लिए अनेक प्रकार के संस्कार बताये गये हैं। जीव में जन्मान्तरीय तथा मातृ-पितृजन्य अनेक दोष होते हैं जो वाल्यकाल से ही बालकों में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उन दोषों से बालक बच्चे रहें, एतदर्थ उन्हें संस्कार की आवश्यकता होती है। गर्भाधान से ही संस्कार प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। सर्व प्रथम गर्भवती नारी दूषित नृत्य, गान से सम्बन्ध न बनाये। आज टीवी पर विशेष अश्लील नृत्य-गान का प्रसारण हो रहा है। वासना वश गर्भवती नारियाँ उन्हें देखती और सुनती हैं। उसका परिणाम गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। जैसे गर्भवती नारी के खाये अन्न और पीये हुए पानी से गर्भस्थ शिशु परिपुष्ट होता है उसी प्रकार गर्भवती नारी जो देखती और सुनती है उसका प्रभाव भी गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। गर्भवती नारी कयाधु को नारद जी ने भागवत धर्म का उपदेश किया था, उसी से उसके गर्भस्थ शिशु प्रह्लाद ज्ञानी बन गये थे। जब प्रह्लाद अपने साथी दैत्य बालकों को यह उपदेश दिया—

सुनों मित्र यह सत्य वचन दुर्लभ तन क्षण ही विलाता है,

यह लख बुध भगवत धर्मो को बचपन से अपनाता है।

अहो मित्र कल्याण कबहु नहीं भगवत पद बिनु पाता है,

श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ सवन मिली सदा एक स्वर गाता है।।

तब यह सुनकर दैत्य बालकों ने प्रह्लाद से पूछा कि यह तुम कैसे और कहाँ जाना। प्रह्लाद ने कहा कि जिस समय मैं अपनी माँ के गर्भ में था उसी समय नारद जी ने मेरी माँ को भागवत धर्म का रहस्य बताया था। उससे मैं माँ के गर्भ में ही तो तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः।

धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामत्युद्दिश्य निर्मलम्।। (भा० ७।७।१५)

राजा वेन मातृ दोष के कारण अत्याचारी निकला था। बालकों को सुसंस्कारी बनाने के लिए जातकर्म, नामकरण, चौल, उपनयन आदि संस्कार यथा समय पर कर देने से बालकों का जीवन सुसंस्कृत हो जाता है। सुयोग्य तथा सदाचारी शिक्षकों के द्वारा बालकों को शिक्षा मिलनी चाहिए। संस्कार हीन शिक्षकों के पास रहने से बालकों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अध्ययन काल में ही सिनेमा आदि से बालकों को बचावे। आज बच्चे टीवी आदि से ही विशेष संस्कार हीन हो रहे हैं। बालकों के समक्ष मधुर तथा उपदेशात्मक वाक्य का प्रयोग करें। जिससे बच्चे मधुर भाषा का प्रयोग कर सकें।

भक्तिप्रियोमाधवः

भगवत्प्राप्ति का साधन भक्ति है। भज् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर भक्ति शब्द बनता है। जिसका अर्थ है प्रेम। परमपिता परमेश्वर में 'अविरल प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने उधव जी से कहा है कि किसी अन्य साधन से मैं वश में नहीं होता हूँ। एक मात्र भक्ति से ही मैं भक्त के वश में हो जाता हूँ। जैसे—पतिव्रता नारी अपनी सेवा से पति को वश में कर लेती है उसी प्रकार भक्त निर्मल प्रेम से मुझे अपने वश में कर लेता है। भगवान अपने अनन्य भक्तों के योग और क्षेम दोनों का वहन करते हैं। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा देना योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम कहा गया है। भक्त के पास जो वस्तु नहीं है और भगवान् भक्त के लिए आवश्यक समझते हैं तो उसे पूर्ण कर देते हैं तथा भक्त की संगृहीत वस्तु को नष्ट भी नहीं होने देते हैं। इसका दूसरा भाव है भक्त के लिए अप्राप्त वस्तु वैकुण्ठ है, उसे प्राप्त करा देना योग है और वहाँ से उसका पतन नहीं होने देना यह भक्त की रक्षा क्षेम है।

भगवान के चार प्रकार के भक्त होते हैं, अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी। संसार में नूतन ऐश्वर्य के लिए जो भगवान में प्रेम करते हैं वे अर्थार्थी होते हैं। जिनके प्राप्त प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य नष्ट हो गये हों तथा जीवन भी कष्टमय हो, वे ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा आदि के लिए भगवान में प्रेम करते हैं, उन्हें आर्त कहते हैं। ये दोनों भक्त सकाम हैं। जो प्राकृत सम्बन्ध से रहित जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान का भजन करते हैं, वे जिज्ञासु कहे जाते हैं और जो भगवत्प्राप्ति के लिए उनसे प्रेम करते हैं वे ज्ञानी भक्त होते हैं।

ये चारों प्रकार के भक्त अपने-अपने अभीष्ट फल के लिए भगवान से प्रेम करते हैं। उनमें पूर्व के तीन भक्तों के साध्य और साधन में भिन्नता है। उनका साध्य ऐश्वर्य और आत्मज्ञान की प्राप्ति है और साधन भगवान को बनाते हैं अर्थात् वे सांसारिक भोग वासना के लिए ही भजन करते हैं; परन्तु ज्ञानी भक्त के साध्य और साधन दोनों भगवान ही होते हैं। अत: ज्ञानी भक्त को भगवान ने अपनी आत्मा कहा है। ज्ञानी भक्त से अन्य तीन प्रकार के भक्तों के साध्य प्राप्त हो जाने पर भगवान से प्रेम कम हो जाता है, किन्तु ज्ञानी भक्त का नित्य और सदा संयोग भगवान से बना रहता है। उनका एकमात्र उद्देश्य भगवान को प्राप्त करना रहता है; क्योंकि अपनी आत्मा का ईश्वर के दास रूप में साक्षात्कार होने के कारण उनकी निर्मल और निरन्तर भक्ति भगवान में बनी रहती है। वैसे भक्तों का जीवन भगवान के अधीन होता है, अर्थात् भगवान के स्वरूप, गुण, लीला, ऐश्वर्य और प्रभाव आदि का स्मरण, चिन्तन, कीर्तन आदि के बिना एक क्षण भी ज्ञानी भक्त जीवित नहीं रह सकते हैं। भगवान भी प्रेमवश अपने जीवन को ज्ञानी भक्त के अधीन मानते हैं। इसलिए भगवान ने गीता के सप्तम अध्याय में ज्ञानी भक्त के लिए कहा है कि 'मैं उनका अत्यन्त प्रिय हूँ और मेरे लिए ज्ञानी अत्यन्त प्रिय है'। ***'प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय:'*** यहाँ अत्यर्थ शब्द अनिर्वचनीय भाव का द्योतक है। इसका भाव है कि भगवान ज्ञानी को कैसे प्रिय हैं। इसको सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होकर भगवान भी नहीं बतला सकते; क्योंकि प्रियता की कोई निश्चित मात्रा नहीं होती है। अत एव ज्ञानियों में अग्रगण्य भक्त प्रह्लाद के भगवत्प्रेम के विषय

शेष पृ० २७ पर

ऐतिहासिक धरोहर श्रीराम सेतु की रक्षा

-डॉ० श्रीनिवास शर्मा
आदर्श संस्कृत महाविद्यालय,
हुलासगंज, गया (बिहार)

स नलेन कृतः सेतुः सगरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान् स्वातीपथ इवाम्बरे ।।

यह अकाट्य सत्य है कि नल के द्वारा निर्मित श्रीराम सेतु विश्व का सबसे प्राचीन पुरातात्त्विक धरोहर है। नासा के वैज्ञानिकों ने इसे साढ़े १७ लाख (१७,५०,०००) वर्ष पुराना माना है, तो हमारे सद्ग्रन्थों ने भी पौराणिक और ऐतिहासिक दृष्टि से कालगणना में त्रेतायुग की अवधारणा को उतना ही पुराना माना है। धार्मिक मान्यता है कि भगवान् श्रीराम ने नल-नील से उस सेतु की श्रीलंका पर चढ़ाई के समय अपनी सेना के लिए बनवाया था। वह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दर, शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्वद्ध था। अतएव वह महान् सेतु सागर में सीमन्त के समान शोभा पाता था—

विशालः सुकृतः श्रीमान् सुभूमिः सुसमाहितः ।
अशोभत महान् सेतुः सीमन्त इव सागरे ।।

भारतीय लोकमानस में रचा-बसा यह सेतु कुछ लोगों के लिए लोककथा का हिस्साा भले ही हो, परन्तु नासा के उपग्रहों की खोज ने इसे पूर्णतः प्रमाणिक बताया है। पाँच साल पहले मीडिया में खबर आई कि भारत और श्रीलंका के मध्य समुद्र में एक सेतु पानी के अन्दर डूबा हुआ है। उसकी लम्बाई ३० किलोमीटर है। वह मानव निर्मित है। यहाँ पर मैं यह भी बताते चलता हूँ कि नासा ने भारत के दक्षिणी क्षेत्र की जानकारी लेने के लिए एक खोजी उपग्रह छोड़ा था। उसी उपग्रह की तस्वीरों से श्रीराम सेतु की प्रमाणिकता निकली है। वह सेतु १५वीं सदी तक समुद्र के ऊपर (आंशिक रूप से डूबा) था, परन्तु आज पानी में पूर्णतः डूबा हुआ है। इसका प्रमाण नौसेना विभाग के दस्तावेजों में वह रिपोर्ट भी है, जिसे १८६० ई० में एडी टेलर ने दी थी। कहानी यों है कि एडी टेलर अपना जहाज लेकर उधर से निकल रहा था। उसका जहाज रामसेतु के बीच में आ जाने के कारण वह भारत और श्रीलंका के बीच के समुद्र से नहीं जा सका। तभी उसने रास्ता छोटा करने के लिए जो परियोजना सोंची थी, उस पर आज की सरकार काम कर रही है।

यहा परियोजना लम्बे समय तक ठण्डे बस्ते में रही। अंग्रेजों ने उस पर हाथ नहीं लगाया। वर्तमान सरकार ने घोषणा की है कि 'सेतुसमुद्रऽम्' नामक परियोजना जल्द ही पूरी कर ली जाएगी। इस परियोजना के द्वारा जिन जहाजों को बंगाल से तमिलनाडु और केरल के बीच की यात्रा करनी हो, तो वे कन्याकुमारी की ओर से जाने की बजाय उसे श्रीलंका नाम के पूरे द्वीपदेश का चक्कर लगाकर वहाँ पहुँचना; क्योंकि कन्याकुमारी मार्ग में उन्हें वैसा गहरा पानी नहीं मिलता, जिससे कि जहाज आसानी से आ-जा सके।

अब विचारणीय विषय यह आता है कि इस परियोजना के नाम पर हम अपनी विरासत को नष्ट

कर देंगे? दुनियाँ का हर देश अपने यहाँ की पुरानी ऐतिहासिक धरोहरों को ढूँढ़ने और बचाने में लगा रहता है। एक हम हैं कि श्रीराम सेतु जैसी स्वत: उपलब्ध ऐतिहासिक धरोहर को बचाने, साँवारने और पर्यटन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनाने के बजाय वैसे ही नष्ट करने पर उतारू हैं, जैसे तालिबानों ने बामियान में महात्मा बुद्ध की विशाल ऐतिहासिक मूर्ति को तोप से उड़ा दिया था। चीन अपनी दीवार की रक्षा के लिए क्या नहीं करता है? वह दीवार करीब २७ सौ साल पुराना है। मिश्र के पिरामिड साढ़े चार हजार साल पुराने हैं। दोनों देश अपने-अपने धरोहरों की रक्षा करना राष्ट्रीय स्वाभिमान का विषय मानते हैं; परन्तु आज हमारा देश भारत साढ़े १७ लाख वर्ष पुराना ऐतिहासिक धरोहर श्रीराम सेतु की सुरक्षा करने के बजाय तोड़ने पर उतारू है।

अब आयें इस परियोजना से होने वाले नुकसानों पर भी जरा विचार कर लें। इस परियोजना को पूरा करने के लिए श्रीराम सेतु को तोड़ा जाएगा। हमारे ऐतिहासिक धरोहर को नष्ट किया जाएगा। भगवान् श्रीराम का प्रतीक नष्ट होगा। इतना ही नहीं जब दो खाड़ियों के बीच नहर की खुदाई पूरी हो चुकी होगी तब तक समुद्री जीवों और बनष्पतियों की करीब ३६०० (कोई एक-दो नहीं, पूरी तीन हजार छ: सौ) प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी होंगी। फिर जब जहाजों की आवाजाही होगी तो तेल के रिसाव के कारण जो प्रदूषण होगा और जहाजों से जो कचरा गिरेगा, उसकी सफाई की व्यवस्था भी एक भयङ्कर समस्या होगी यानी मामला कुल मिलाकर पर्यावरण के अभूतपूर्व विनाश एवं प्रदूषण का है, जिस पर लोगों ने चुप्पी साध रखी है।

कनाडा के विश्वविख्यात् सूनामी विशेषज्ञ प्रो० टी०एस० मूर्ति ने चेतावनी दी है कि श्रीराम सेतु टूट जाने के बाद जब कभी सूनामी तुफान आया तो उसके क्रोध से सारा केरल समुद्र में समा जाएगा; क्योंकि उसके क्रोध को कम या खत्म कर देने वाला श्रीरामसेतु रूपी अवरोधक बीच में नहीं होगा।

कुछ भारतीय वैज्ञानिकों का मत है कि श्रीरामसेतु टूट गया तो उसके आस-पास हजारों सालों से सुरक्षित पड़ा थोरियम का वह अखण्ड भण्डार विखर जाएगा, जिसके सहारे हमारे श्रेष्ठतम अणु वैज्ञानिक भाभा ने देश को परमाणु ऊर्जा में आत्मनिर्भर बनाने का सपना देखा था और जिसे 'आणविक ऊर्जा आयोग' के नेतृत्व में भाभा के प्रतिभाशाली शिष्य आज भी एक मिशन मानकर कार्य कर रहे हैं। सवाल है कि इस थोरियम को नष्ट होने से बचाने के लिए सरकार क्या कर रहीं है?

अब जरा आप भी सोंचे—

१. विश्व का सर्वाधिक प्राचीन पुरातात्त्विक धरोहर श्रीरामसेतु को नष्ट करना उचति है?

२. हिन्दू समाज की आस्था श्रीराम सेतु को सेकुलरों द्वारा तोड़ा जाना ठीक है?

३. वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित १७,५०,००० वर्ष प्राचीन श्रीराम सेतु हिन्दू विरोधी नीति का शिकार बन जाएगा?

४. विश्व का प्रत्येक सभ्य समाज अपने पूर्वजों की कृतियों को संजोकर रखता है और हम इसे नष्ट कर देंगे?

मैं उक्त तथ्यों पर आत्ममंथन करने के लिए प्रस्तुत लेख को आपकी सेवा में समर्पित कर रहा हूँ। आशा है कि हिन्दू (भारतीय) होने के नाते आपका चित्त भी कुछ करने (सोचने) के लिए बाध्य हो।

एक कथा : श्रीराम कथा

कथा बड़ी पुरानी है, श्रीराम की अमर कहानी है–युगों से, सदियों से चली आ रही यह कथा केवल श्रीराम की कहानी नहीं, ऐतिहासिक घटना मात्र नहीं, अपितु मानव-जीवन-दर्शन का दर्पण है......... निर्विवाद दर्पण है। यह कथा परमात्मा के दिव्य चरित्र के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की दिव्य कथा है। यह कथा न केवल सद्‌गुणों की चर्चा करती है, अपितु सद्‌गुणों को चरितार्थ भी करती है।

हम जीवन में अनेक धार्मिक कृत्य करते हैं। मन्दिर जाते हैं, माला जपते हैं, गंगा में स्नान कर अपने को पवित्र एवं धन्य समझते हैं। लेकिन इतने मात्र से जीवन धन्य नहीं होता। सद्‌गुणों की व्याख्या जो राम कथा करती है, वह सर्वथा भिन्न है। अयोध्या के राज्य का परित्याग कर पिता के आदेश का पालन करना या शबरी की कुटिया में जाकर जूठे बेर खाना, एक आदर्श भाई, एक आदर्श पुत्र और एक आदर्श राजा के रूप में श्रीराम के सद्‌गुणों की व्याख्या है। श्रीराम कथा के नायक श्रीराम ऐसे आनन्द सिन्धु हैं, जिनके बिन्दु मात्र से सारा त्रैलोक्य सुखी हो जाता है।

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक विश्रामा।।

श्रीराम की महिमा, नाम, रूप, गुण और उनकी कथाएँ सब अपार और अनन्त हैं। श्रीराम के लीला का पार वेद, शेष और शिव भी नहीं पा सकते हैं। बड़े-बड़े पक्षियों से लेकर छोटे-छोटे मच्छर तक सभी आकाश में उड़ते हैं, लेकिन आज तक उनका कोई अन्त जान नहीं पाया। श्रीराम की महिमा तो इतनी अथाह है, कभी कोई उनकी थाह पा नहीं सकता है। श्रीराम का श्रीविग्रह अरबों कामदेवों के समान सुन्दर है। वे शत्रुओं का नाश करने में अनन्त कोटि दुर्गा के समान समर्थ हैं। उनका ऐश्वर्य अरबों इन्द्रों के समान है तथा उनमें अरबों आकाश समा सकते हैं। अरबों पवनों के समान उनमें महान् बल है। अरबों सूर्यों के समान उनके प्रकाश हैं, अरबों चन्द्रमाओं के समान वे शीतल हैं। वे संसार के सारे क्लेश दूर कर सकते हैं। वे अरबों कालों के समान अत्यन्त कठोर, दुर्गम और भयङ्कर हैं। वे अरबों धूमकेतुओं के समान अपराजेय हैं। वेद यही कहता है कि श्रीराम की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती। श्रीराम के समान तो श्रीराम ही हैं।

यही है श्रीराम-कथा जिसे हम करोड़ों वर्षों से सुनते और कहते आ रहे हैं। आखिर कुछ तो ऐसा है इस कथा में कि न सुनने वाले थके....... न कहने वाले थके.......न गाने वाले थके। व्यवहार जगत् का नियम है कि एक ही वस्तु बार-बार उपयोग करने से उसमें रूचि कम हो जाती है, लोग ऊब जाते हैं। लोक अक्सर प्रश्न करते हैं कि वही का वही राम कथा, वही का वही चौपाइयाँ और वही श्रीराम नाम लेकिन फिर भी लोग ऊबते क्यों नहीं? एक सन्त ने इस जिज्ञासा का बहुत ही अच्छा उत्तर दिया— मछली युगों से पानी में रहती है फिर भी वह पानी से ऊबी नहीं। जिस दिन मछली पानी से ऊबेगी, उस दिन लोग श्रीराम कथा से भी ऊब जाएँगे।

वास्तव में राम-कथा से कभी तृप्ति नहीं होती। पारायण करने वाले तो कभी तृप्त होते ही नहीं,

परन्तु सुनने वाले यदि यों कहें कि हम तृप्त हो गए तो समझना चाहिए कि श्रीराम कथा की महिमा उन्होंने जानी ही नहीं है।

इस सन्दर्भ में इसका अन्दाजा केवल इस बात से होता है कि कुछ वर्ष पूर्व दूरदर्शन पर जब फिल्म निर्माता-निर्देशक श्रीरामानन्द सागर द्वारा निर्मित 'रामायण' धारावाहिक प्रस्तुत किया गया तो भारत ही नहीं, मुस्लिम देशों—पाकिस्तान और बंगलादेश में लोग अपने-अपने घरों में 'रामायण' को देखने के लिए आतुर रहते थे। इन सभी देशों की सड़कें सूनी पड़ जाती थीं। ऐसा लगता था कि शायद कर्फ्यू लगा हो। राजतन्त्र से लेकर सामान्य व्यक्ति तक सभी अपना काम-काज बन्द कर अपने टेलीविजन सेट के आस-पास जुटे रहते थे। सम्भवत: यह पहला धार्मिक सीरियल था जो सबसे अधिक चर्चित और लोकप्रिय हुआ। इतनी अधिक लोकप्रियता के बावजूद श्रीराम कथा पर नई-नई अथवा नए-नए सीरियल अब भी बन रहे हैं और जब तक सृष्टि कायम रहेगी श्रीराम-कथा का गुणगान होता रहेगा।

पिछले कुछ वर्षों से तो श्रीराम-कथा लोगों के जीवन में व्याकरण बन गई है। श्रीराम-कथा की मनभावनी सुगन्ध न केवल देश की चारों दिशाओं में व्याप्त हो चुकी है, बल्कि वह देश की सीमाओं को पार कर विदेशों में भी रामभक्तों के हृदयों को आनन्द प्रदान कर रही है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनन्त रघुनाथा।।

निज निज मति मुनि हरि गुन गावहि। निगम सेष सिव पार न पावहि।।

****

पृ० २३ का शेष

में विष्णुपुराण में कहा गया है कि श्रीकृष्ण में आसक्त और उनकी स्मृति के आह्लाद में तन्मय होने के कारण प्रह्लाद महान सर्पों के डँसने पर भी अपने शरीर की वेदना को नहीं जान सके।

भक्ति दो प्रकार की होती है—साध्यभक्ति और साधनभक्ति। साध्यभक्ति को ही फलभक्ति कहते हैं। वह ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है। श्रीपराङ्कुश मुनि आदि आलवारों में साध्य भक्ति थी, जो ईश्वरीय कृपा से प्राप्त हुई थी। उन लोगों को श्रीभगवान में अविरल प्रेम के लिए किसी साधन का सहारा नहीं लेना पड़ा था, बल्कि श्रीभगवान की कृपा मात्र से ही उन्हें प्राप्त हो गया था। निष्काम कर्म और ज्ञानयोग के माध्यम से जो भक्ति प्राप्त होती है, वह साधन भक्ति कही जाती है। गीता दशम अध्याय के ७वें श्लोक से कहा गया है कि भगवान के अनन्त कल्याण गुणों और उनकी दिव्य विभूतियों के ज्ञान से निश्चल भक्ति प्राप्त होती है।

****

अर्चावतार (प्रतिमा रूप में)

विश्व कल्याण के लिए श्रीमन्नारायण अर्चा रूप में सर्वदेश, सर्वकाल और सब व्यक्ति के लिए सुलभ हो जाते हैं। अर्चा के अतिरिक्त पर, व्यूह, विभव और अन्तर्यामी सर्वदेश सब काल और सर्व व्यक्ति के लिए सुलभ नहीं हैं।

पर स्वरूप में भगवान् त्रिपाद् विभूति में रहते हैं। वे परस्वरूप नित्यों, मुक्तों और श्री आदि देवियों के लिए सुलभ हैं। वहाँ तक संसारी जीवों की पहुँच नहीं है।

श्रीभगवान का व्यूहरूप पिपासु व्यक्तियों के लिए क्षीर समुद्र के जल के समान दुर्लभ है। जैसे प्यासा व्यक्ति अतिदूरवर्ती समुद्रजल से अपनी प्यास शान्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार सांसारिक कष्टों से पीड़ित व्यक्ति दूरवर्ती व्यूहरूप के दर्शन, पूजन आदि से अपना कष्ट निवारण नहीं कर सकता। सांसारिकों को वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं है। त्रेता, द्वापर आदि युगों में अवतरित श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि वैभव रूप की तरह दर्शन, पूजन आदि हम संसारिकों के लिए सुलभ नहीं है। जैसे केवल वर्षा ऋतु में प्रवाहित होने वाली नदियों के जल से ग्रीष्म ऋतु में पिपासु व्यक्तियों की प्यास शान्त नहीं हो सकती, वैसे ही वैभवावतार के असमय कालिक व्यक्तियों को उनके दर्शन, पूजन आदि से लाभ नहीं हो सकता।

अन्तर्यामी की उपासना भी सांसारिकों के लिए सुलभ नहीं है; क्योंकि अन्तर्यामी का स्वरूप व्यक्त न होना कारण है, जिसके पूजन आदि किये जा सके। जैसे तिल में तेल, दूध में मक्खन और काष्ठ में आग आदि का स्वरूप अव्यक्त होने से दर्शन, पूजन के योग्य नहीं होता। दूसरा उदाहरण यह है कि जैसे प्यासे व्यक्ति की प्यास भूमिगत अप्रत्यक्ष जल से शान्त नहीं हो सकती, उसी प्रकार सांसारिकों के लिए अप्रत्यक्ष अन्तर्यामी की उपासना सम्भव नहीं है।

अत एव भक्तवात्सल्य भगवान सौलभ्य, सौशील्य आदि गुणों के कारण व्यापक होते हुए भी जन कल्याणार्थ प्रतिमा रूप में आ जाते हैं। पद्म-पुराण में अर्चा (प्रतिमा) की सर्वाधिक विशेषता बतलायी गयी है।

भारतेऽस्मिन् महावर्षे नित्यं सन्निहितो हरिः ।
सर्वावस्थासु सौभाग्यमर्चायां विन्दते जनैः ।।

अर्थात् इस भारतवर्ष में सर्वदा निकट रहते हुए नारायण की अर्चामूर्ति में सुलभता से लोग प्राप्त करते हैं।

जम्बुदीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे ।
अर्चायां सन्निधिर्विष्णोर्नेतरेषु कदाचन ।।

जम्बु द्वीप के सुन्दर भारत वर्ष में अर्चा मूर्ति दो प्रकार की होती है। स्वयं व्यक्त तथा मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठापित। स्वयं व्यक्त का अर्थ है प्रतिमा रूप में भगवान को स्वयं प्रकट हो जाना। अनेक दिव्य देशों में भगवान प्रतिमा रूप में प्रकट हो गये। जैसे श्री जगन्नाथ धाम, बद्रीकाश्रम, श्रीकूर्म, दण्डकारण्य, वैकुण्ठ-धाम, तोताद्रि आदि स्थानों में भगवान स्वयं व्याप्त हैं। शालग्राम मूर्ति में स्वयं व्यक्त भगवान सर्वाधिक भक्तों के लिए सुलभ हैं। शालग्राम पूजन में जननाशौच और मरणाशौच का दोष नहीं लगता है।

****

आश्रम समाचार

पूज्यपाद श्रीस्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज ने धार्मिक तथा आध्यात्मिक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाते हुए गया, जहानाबाद, अरवल, औरंगाबाद, पटना, आरा और नालंदा आदि जिलों में २५ स्थानों पर श्रीमद्भागवत महापुराण द्वारा साप्ताहिक तथा नवाह्निक प्रवचन (ज्ञान-यज्ञ) किया। इस प्रवचन से प्रभावित होकर लगभग बीस हजार से अधिक लोगों ने श्रीवैष्णव धर्म की दीक्षा श्रीस्वामी जी महाराज से ग्रहण की। पीसाय (औरंगाबाद) यज्ञ में वैकुण्ठवासी श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की पञ्चदिवसीय जयन्ती मनायी गयी, जिसमें श्री स्वामी जी महाराज द्वारा प्रणीत दिव्य ग्रन्थों (प्रवन्धों) का नित्य पारायण किया गया।

प्रकाशन

श्री वाल्मीकि रामायण पर गोविन्दराजीय टीका का आधार लेकर श्रीवैष्णवमतानुसार 'श्रीराम-कथा-रसायन' का प्रकाशन हिन्दी भाषा में तीन खण्डों में पूज्यपाद श्रीस्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज द्वारा करने का निर्णय लिया गया है, जिसमें प्रथम खण्ड का प्रकाशन हो चुका है। द्वितीय खण्ड का प्रकाशन भी शीघ्र ही होने वाला है।

निर्माण-कार्य

स्थान से पश्चिम दिशा में निर्माणाधीन श्रीपराङ्कुशद्वार का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है तथा श्रीवैष्णव सेवार्थ चार हजार वर्गफीट में एक विशाल लोहे तथा स्टवेस्टर से बना 'प्रसाद सेवा सदन' निर्मित हो चुका है। इसमें पाँच लाख रुपये खर्च हुए।